International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 102-105

भारत में सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

डॉ0 अवधेश कुमार

अतिथि प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, सी0 एम0 पी0 महाविद्यालय इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर–प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

ज्योतिबा गोविन्द राव फुले जिन्हे लोग आदर से 'महात्मा ज्योतिबा फुले' कहकर पुकारते है उनके दर्शन, कार्य और विचारधारा का आजादी से पहले और बाद के दशको में जितना अध्ययन और मूल्यांकन होना चाहिए था, उतना नही हो सका और यह सब अनजाने में हुआ ऐसा नही है बल्कि जान–बूझकर उनके कार्य और विचार दर्शन को नजरअंदाज किया जाता रहा और आज भी यही स्थिति बनी हुई है। हमारे देश में सदियो से यह होता रहा है जो लोग परम्परागत समाज व्यवस्था को बदलने या उसमें आमूलचूल परिवर्तन की बात करते है, और एक नई समाज व्यवस्था की स्थापना का सपना देखते है, उनको हमेशा उपेक्षित किया गया हैं लेकिन जब ऐसी स्थिति आ जाए कि उनके कार्यो को बहुत दिनो तक काल के अंधेरे में रख पाना सम्भव न हो तो उन्हे किसी अवतार की तरह सामन्यजनो के सामने रखने का प्रयास किया जाता है। यह बात बुद्ध के साथ हुई, कबीर और रैदास के साथ भी और यही बात जोतिबा फुले के साथ भी हुई है।

ज्योतिबा फुले आधुनिक भारत में क्रान्तिकारी समाज परिवर्तन के आन्दोलन के मूल प्रवर्तक है यह बात सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नही है। उनके साहित्य को पढ़ने से ही इस बात का पता चल जाता है। कि उन्होने किस तरह हिन्दू समाज के शूद्रादि अतिशूद्रों (दलित और पिछड़े वर्ग के लोगो) की समस्या को उजागर करने की कोशिश की है। उन्होने किसानो के सवालो को उठाया। गॉव देहातो में गॉव के मुखिया, जमीदार, साहूकार, कुलकर्णी, ब्राह्मण, बनिया और पटवारी आदि लोग किसानो के अज्ञान का लाभ उठाकर किस प्रकार उनका शोषण करते है। इस बात का जितना विशेषण गहराई से फुले साहित्य में मिलता है उतना उनके समकालीन किसी भी समाज सुधारक के साहित्य में नही मिलता। उन्होने नारी की गुलामी के सवालो को उठाया। वे पण्डा पुरोहित वर्ग को धार्मिक शोषक वर्ग की संज्ञा देते है और बताते है कि शूद्रादि अतिशूद्र तथा नारी वर्ग हिन्दू धर्म के गुलाम है। जोतिबा फुले की राय में यह सारे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक सवाल हिन्दू समाज व्यवस्था, हिन्दू धर्म, पुरोहित वर्ग के कारण पैदा हुए है इसलिए वे इसी व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस करते है। साथ ही उन्होने सामान्य व्यक्ति, दलितो, पद–दलितो एवं भारतीय महिलाओं के लिए एक नवीन युग के प्रारम्भ की घोषणा भी की। उनका यह लक्ष्य था कि सामाजिक समानता, न्याय एवं तर्क के आधर पर सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निमाण किया जाए। फुले के समय में जाति एवं समाज सम्बन्धी विचार विमर्श हेतु 'आर्यो का प्रजाति सिद्धान्त' सर्वाधिक प्रभावशाली सामान्य प्रवचन था। विलियम जोन्स, चार्ल विलकिन्स, जेम्स प्रिन्सप एवं अन्य यूरोपीय प्राच्यवेन्ताओ में, यूरोपियो एवं प्राचीन वैदिक लोगो के मध्य नृजातीय नातेदारी के दावे के लिए इसका सुगमता से उपयोग किया। एच. टी. विलसन, सी. लारेन्स, एम. टी. कोलब्रोक, मोनियर विलियन्स एवं मैक्स मूलर आदि यूरोपीय विद्वानो की प्राचीन आर्य समाज पर स्थायी रूचि तथा इस समाज के प्रति उनके सम्मान एवं प्रशंसा ने उच्च जातीय भारतीय को एक महत्वपूर्ण नैतिक बल प्रदान किया। अतः भारतीय सभयता को आर्य सभ्यता की एक प्रमुख व्युत्पत्ति के रूप में देखा गया और जाति व्यवस्था की प्रंशसा एक ऐसे साधन के रूप मे की गई जिसके माध्यम से भिन्न प्रजातीय एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को एक साथ लाया गया तथा आर्यो के सभ्य बनाने के प्रभाव के अधीन किया गया। एक स्तर पर फुले ने इस मान्यता को उलट दिया और यह तर्क प्रस्तुत किया कि निम्न जातियॉ, जिन्हे वह कभी–कभी शूद्र एवं अतिशूद्र कहते है जो कुन्जी, माली, ठंगर, भील, कोली, महर एवं मंग के रूप में सूचीबद्ध देश की मूल निवासी थी जिन्हे विजेता आर्यो द्वारा दास वनाया गया एवं शोषित किया गया तथा प्रचुर जन सामान्य को धोखा देने और अपनी शक्ति को वैधता प्रदान करने के लिए उन्ही के द्वारा एक साधन के रूप में जाति आधारित हिन्दुत्व का निर्माण किया गया। ज्योतिराव का यह निश्चित एवं वास्तविक मत था कि भारत का प्राचीन इतिहास ब्राह्मण एवं गैर ब्राह्मण के मध्य संघर्ष के अतिरिक्त कुछ नही था। अतः ब्राह्मणो के प्रभुत्व के विरूद्ध एक सामान्य मोर्चे में महर एवं मंग जैसी विशाल अस्पृश्य जातियो के साथ मुख्य कृषक जातियो (ये कुन्बी अथवा कृषक, माली, ठंगर अथवा गड़रिया के अतिरिक्त थी) को साथ लेने का फुले ने चैतन्य रूप से प्रयास किया। अपने जीवन की महत्वाकांक्षा एक जाति विहीन समाज की स्थापना को पूरा करने के लिए फुले ने 24 सितम्बर 1973 मे 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की। फुले ने ब्राह्मण पुजारी के बिना विवाह करवाए तथा विधवा पुनर्विवाह आदि भी करवाए। फुले के मतानुसार ब्राह्मण पुजारी द्वारा किसी अन्य जाति के सदस्य के लिए धार्मिक अनुष्ठान करवाना उनके मध्य शूद्रता के सम्बधों की मूर्त अभिव्यक्ति है जो कि हिन्दू धार्मिक संरक्षण का आधार बनती है। केवल ब्राह्मण पुजारी ही अपनी अनुष्ठानिक शूद्रता में मानवीय विश्व एवं उच्च देवताओ के विश्व के बीच मध्यस्था करने की शक्ति रखता है इसीलिए वही विश्व में दैवी शक्तियों के प्रवेश को नियत्रित करता है इसी कारण फुले ने यह महसूस किया कि ब्राह्मण पुजारी की सेवाओ को प्राप्त करना उस सिद्धान्त को ही नकारता है जिस पर उनको आशा थी कि निम्न जातियों का एक समुदाय इस पर आधारित होगा। सत्य शोधक समाज ने ब्राह्मण पुजारियो के बिना विवाह को क्रियात्मक रूप से प्रोत्साहित किया। इस प्रकार सत्य शोधक समाज ने उन सभी व्यक्तियो के लिए जो स्वयं को निम्न जातियो का समझते थे, चाहे वे समाज के थे अथवा अन्य अनेक समूहो में से किसी एक के थे जो कि निम्न जातियो के उत्थान हेतु कार्य कर रहे थे ''वैचारिकी चेतना के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका के उत्तरदायित्व को लिया।

ऐतिहासिक धर्मो, इसाई एवं इस्लाम हिन्दुत्व के मध्य एक मूलभूत अन्तर इतिहास के प्रति उनके दृष्टिकोणो में निहित है जहॉ उपरोक्त मानव इतिहास को भ्रम की अनन्त पुनरावृत्ति के रूप में देखता है वही ऐतिहासिक धर्म, विश्वास रखने वालो का एक

दिखने वाला सम्प्रदाय एवं अवतरित अद्धारक के चारो ओर संगठित इन्ही प्रक्रियाओ में अपनी नियति को कार्यावित करते है। फुले की मुख्य दिलचस्पी इतिहास के अन्तर्गत निम्न जातियो के संघर्ष को खोजने में मिथक को इतिहास में रूपान्तरित करने में तथा वर्तमान एवं भूतकालीन दमन के बीच एक ऐतिहासिक सम्बन्ध स्थापित करने में थी। आर्य पूर्व राज्य के लिए राजा बालि एक प्रतीक तथा मुख्य आधार के रूप में उपस्थित रहे। यहॉ यह देखना सम्भव है कि किस प्रकार फुले के मानव इतिहास बोध ने उनकी योजना को अधिक सामान्य रूप से मजबूत किया तथा व्यापक स्तर पर इतिहास उद्देश्यपूर्ण बन गया। इस प्रकार उन्नीसवी सदी ने पश्चिम–भारत की निम्न एवं अस्पृश्य जातियो के एक प्रचण्ड एवं विवादस्पद विरोध के आन्दोलन के प्रारम्भ को देखा जिसका निशाना हिन्दू जाति संस्तरण में उनकी निम्न स्थिति के प्रभाव थे।

पेरियार ई. वी. रामास्वामी नायकर की सामाजिक न्याय अवधारणा

पेरियार को यह पक्का विश्वास था कि जातिवाद एवं हिन्दुत्व एक ही चीज है वे चाहते थे कि हिन्दुत्व जिस रूप में उन्होने उसको देखा, पूर्णतया समाप्त हो जाए। उनका आन्दोलन प्रजातीय चेतना की ओर मुड़ गया तथा एक 'द्रविडवादी' आन्दोलन बन गया, जिसका उद्देश्य था आर्यो के प्रभुत्व के विरूद्ध द्रविडों के अधिकारो की रक्षा करना। इसने देश में एक अन्यायी एवं दमनकारी सामाजिक व्यवस्था को प्रवर्तित करने के लिए आर्यो को दोषी ठहराया। पेरियार ने यह महसूस किया कि अभिजावतों की सभी नई वैचारिकी की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वे सब 'प्रजाति के आर्यो के दृष्टिकोण' ही थे। जाति को समझने के लिए भारतीय अभिजात ने एक नए मॉडल के रूप में 'आर्य दृष्टिकोण' को उत्साह के साथ अपनाया। अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य परिभाषित रूप से आक्रमणकारी आर्यो के वंशज माने गए। जबकि शूद्रो एवं अस्पृश्यो को विजित स्थानीय लोगो का वंशज माना गया। जाति और प्रजाति की इस नई भाषा में आर्यो के वंशज का दावा करना 'द्विज' प्रस्थिति का दावा करने के समान था, तथा द्रविड़ अथवा अनार्य के वंशज का दावा करना यह कहने के समान कि वह शूद्र है। भारत के उच्च जाति अभिजात ने 'भारतीय राष्ट्रीयता' के आधार के रूप में आर्य एवं संस्कृतवादी सस्कृति को लेना प्रारम्भ किया। किन्तु ऐसा करने में वे, एक भाग उच्च जातियो एंव स्थूल रूप से अधिकांश उत्तरी समूहो की संस्कृति को ही सम्पूर्णता के रूप में ले रहे थे। पेरियार के आन्दोलन ने आर्यो के प्रभुत्व के विरूद्ध द्रविड़ो के अधिकारो की रक्षा का प्रयास किया। उन्होने ब्राह्मणो को हिन्दू अहंकार के प्रतिनिधियो तथा सामाजिक अन्याय के गढ़ के रूप में देखा। नायकर ने काग्रेस को छोड दिया और ब्राह्मण प्रभुत्व के एक उपकरण के रूप में उसकी आलोचना भी की। 1925 में उन्होने 'स्व–सम्मान आन्दोलन' संगठित किया जिसकी रचना द्रविड़ो के उत्थान के एक आन्दोलन के रूप मे की गई तथा ब्राह्मणो की निरकुशता एवं कपटी पद्वतियों जिनके द्वारा वे हिन्दू जीवन के सभी क्षेत्रो को नियन्त्रित करते थे को उजागर किया। नायकर ने पुराणो की ऐसी परीकथाओ के रूप में जो कि केवल काल्पनिक एवं अतार्किक ही नही, वरन् घोर अनैतिक भी थी सार्वजनिक रूप से भर्त्सना की। नायकर ने ब्राह्मण प्रभुत्व के एक साधन के रूप में हिन्दू धर्म पर आपेक्ष किया। सी. राजगोपालचारी के कांग्रेस मन्त्रिमण्डल द्वारा दक्षिण में हिन्दी को स्कूलो में एक आवश्यक विषय के रूप में लागू किया गया। इसे तमिल संस्कृति एवं उसकी सम्पन्न सहित्यिक परम्परा के अपमान के रूप में लेकर नायकर के नेतृत्व में अन्नादुराई, करूणानिधि एवं अन्य तमिल नेताओ ने इसका प्रचंड विरोध किया। नायकर ने हिन्दी के इस आरोपण को उत्तर भारतीय आर्यो द्वारा तमिल लोगो के आधुनिकरण के नाम पर अधिपत्य को देखा। उन्होने हिन्दू धर्म की भी एक अफीम के रूप में भर्त्सना की गई, जिसके माध्यम से ब्राह्मणो ने जनमानस को संवेदन शून्य एवं नियमित कर सकता है क्योंकि 'एक हिन्दू वर्तमान अवधारणा में एक द्रविड हो सकता है किन्तु एक द्रविड एक हिन्दू न तो हो सकता है और न होगा।' पेरियार के मतानुसार राम और सीता तिरस्करणीय चरित्र है जो कि चतुर्थ श्रेणी के निम्नतम मानव द्वारा भी अनुकरण अथवा प्रंशसा योग्य नही है। दूसरी और रावण को एक श्रेठ चरित्र वाले द्रविड के रूप में चित्रित किया हैं अपनी पुस्तक ''द रामायण ए टू रीडिंग'' के आमुख में नायकर ने कहा है कि इस कथा का तमिलनाडू में और अधिक समय तक आदर करना समुदाय एवं देश के स्व–सम्मान के लिए हानिकर एवं अपकीर्तिकर है।

स्वतन्त्रता की पूर्व साध्य पर नायकर ने दक्षिण भारत के द्रविडो का ''बिट्रिश से आर्यो के पास शक्ति के स्थानान्तरण के प्रति सतर्क रहने'' का आह्वान किया। आर्य साम्राज्यवाद के अन्तर्गत ब्राह्मण प्रभुत्व के भय से नायकर ने एक अलग दक्षिण भारतीय राज्य द्रविडस्थान के निर्माण की मॉग की। आज तमिलनाडु में अनेक दक्षिण भारतीय राजनीतिक दल, भारतीय उप–महाद्वीप में एक द्रविड संस्कृति के निर्माण सम्बन्धी अपने कार्यक्रम का प्रेरणा स्रोत पेरियार को मानते है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक न्याय सम्बन्धी विचार

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का काल भारत मे नये मूल्यो की स्थापना, नवजागरण तथा नए चिन्तन के उदय का काल था। विदेशी शासन और दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष तथा उस संघर्ष के बाद मिली आजादी को मजबूत करने की चुनौती देश के सामने थी। महात्मा गॉधी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस आदि महान व्यक्ति उस समय देश के क्षितिज पर उदित थे जिनके प्रकाश से सारा देश आलोकित हो रहा था। डॉ. अम्बेडकर ने राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए स्वतन्त्रता संघर्ष का भार अन्य नेताओ पर छोडकर स्वयं समाज सुधार के कार्य में लग गये। उनके समर्पित जीवन ने उनको शोषितो का प्रतीक बना दिया। समाजिक अन्याय से सम्बन्धित छोटी–छोटी घटनाये सभी व्यक्तियो के जीवन में आए दिन घटती रहती थी, परन्तु किसी ने भी इसको गम्भीरता से नही लिया। डॉ. अम्बेडकर पहले व्यक्ति थे जो 'सामाजिक न्याय' के सबसे बडे समर्थक के रूप में भारत के रंगमंच पर अवतरित हुए और लाखो करोड़ो आछूतपन से दुःखी शोषित व उत्पीडीत लोगों के भाग्य विधाता बन गए। डॉ. अम्बेडकर ने इस छूआछूत और जातिवाद की विभीणिका का न केवल विरोध किया, बल्कि इसे पूर्ण रूप से नष्ट करने का प्रयास भी किया। अम्बेडकर ऐसी व्यवस्था के समर्थक थे जो शुद्र मानवतावादी, समतावादी और धर्म निरपेक्षतावादी हो जहॉ सभी नागरिक सकीर्णता, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, जातिगत भेदभाव, सामाजिक विषमता तथा आर्थिक विपन्नता के शिकंजो से मुक्त रह सके। इन सभी बुराईयों को मिटाने के लिए अम्बेडकर जवीन भर संघर्षरत रहे। भारतीय संविधान की रचना के समय भी उन्होने यही विचार रखा था उनका ध्येय भूमिहीन मजदूरो, गरीब किसानो व श्रमिक वर्ग की समस्याओ का समाधान करके उनके लिए समाजिक न्याय उपलब्ध कराना था। उन्होने कहा था कि 'समानता का अर्थ है सभी को समान अवसर मिले और उनकी प्रतिभा को भी प्रोत्साहन दिया जाय। उन्होने इस बात पर बल दिया कि हिन्दू समाज का गठन दो सिद्धान्तो पर किया जाए समानता व जाति विहिनता। इसके लिए उन्होने निम्न स्तरो पर कार्य किये।

समाज में रहकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

समाज के दलित एंव अछूत वर्ग में जागृति लाने के लिए अम्बेडकर ने स्थान–स्थान पर सभाऍं आयोजित की। 21 मार्च 1928 को

उन्होने नागपुर में एक सभा की तथा संदेश दिया यदि भारत में स्वराज आता है तो भारत के संविधान में अछूतो के लिए मौलिक अधिकार अवश्य सम्मिलित किये जाने चाहिए। अपने मन की बात अछूतो तक पहुचाने के लिए उन्होने अप्रैल 1927 में मुम्बई में एक पक्षिक समाचार पत्र 'बहिष्कृत भारत' निकालना शुरू किया। 19 व 20 मार्च, 1927 को मदाह मे अछूतो की एक सभा की अध्यक्षता करते हुए उन्होने एक प्रस्ताव पास कराया – ''सवर्ण अछूतो को उनके अधिकार दिलाने में उनकी सहायता करे, उन्हे नौकरियो में रखे, अछूतो को खाना दे तथा मरे हुए जानवारो को स्वयं दफनाएँ। डॉ. अम्बेडकर ने गॉव–गॉव जाकर सभॉए की और अछूत को जागृत किया। 16 सितम्बर, 1939 को उन्होने अहमदनगर में एक सभा की और मुम्बई के गवर्नर को ज्ञापन देकर मॉग की गई कि वतनदारों को जो महार है, भूमि की रैयतवारी व्यवस्था में लाया जाए; उनकी सेवाओ के बदले में उन्हे वेतन दिया जाए और उनको सरकारी कर्मचारी माना जाए। परोक्ष रूप से उन्होने समाज से लडने का बिगुल बजा दिया था। उनके अनुसार ईश्वर की दृष्टि में सभी मानव समान है और सभी उसी परमपिता की सन्तान है फिर भी एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण करना उनकी दृष्टि में अन्याय था। डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे अप्रजातांत्रिक समाज के प्रति विद्रोह ही नही किया अपितु उसके विरूद्ध सबल जनमत बनाने में लग गये। वे चाहते थे कि समाज का वह शोषित; पीडित और दलित वर्ग इस शोषण के दल–दल से बाहर निकले और उसे सामाजिक न्याय तथा प्रतिष्ठा प्राप्त हो।

सरकार में रहकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

मुम्बई विधानसभा में डॉ. अम्बेडकर ने एस. के. बोले से एक प्रस्ताव रखवाया जिसमें कहा गया था कि ''विधानसभा सिफारिश करती है कि अछूत समाज को सार्वजनिक पानी के स्थान, कुँए एवं धर्मशालाएँ, जिनका निर्माण तथा व्यवस्था सरकारी धन से होती है अथवा सरकार द्वारा संचालित संस्थाओ द्वारा होती है तथा स्कूल, अदालतों, कार्यालयों व अस्पतालों का उपयोग करने देना चाहिए।'' मुम्बई सरकार ने 11 सितम्बर, 1923 को आदेश जारी करके इस प्रस्ताव को अमल में लाने की पहल की, किन्तु अधिकांश जिला परिषदो व चुंगी कमेटियों ने अछूतो को ऐसा करने का अधिकार नही दिया। 19 तथा 20 मार्च, 1927 की सभा में सरकार से कहा गया – ''खास कानून द्वारा अछूत को मुर्दा जानवर खाने से रोका जाए उनको मुफ्त अनिवार्य शिक्षा तथा छात्रावासो की व्यवस्था की जाए।'' डॉ. अम्बेडकर ने 1935 में विधानसभा में दलितो के लिए आंरक्षण की मॉग की और विधानसभा में आबादी के आधार पर दलितो के सदस्यो को सीधे दलितो द्वारा चुनने की बात कही। इसके फलस्वरूप मुम्बई सरकार ने डॉ. पी. जी. सोलंकी के प्रस्ताव पर एक स्टारेट कमेटी नियुक्त की, जिसे दलित जातियो तथा आदिम जातियो के उत्थान के लिए सिफारिशे करने के लिए कहा गया। ए. वी. थक्कर, सोलंकी व डॉ. अम्बेडकर इस कमेटी के सदस्य बने। मार्च 1940 में इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा –

- दलितो के छात्रो की वजीफो की संख्या बढ़ाई जाए।
- दलितो के छात्रो के लिए छात्रावासो की व्यवस्था की जाए।
- दलितो के छात्रो को कारखानो, रेल की कार्यशालाओं तथा अन्य प्रकार के प्रशिक्षण के लिए वजीफे दिये जाएँ।
- दलित छात्रो को विदेशो में इंजीरियरिंग पढ़ने के लिए वजीफे की व्यवस्था की जाए।
- इन सभी कार्यो को देखने के लिए एक खास अधिकारी की नियुक्ति की जाए।

डॉ. अम्बेडकर ने मॉग की कि प्रौढ मताधिकार अथवा पृथक चुनाव में से उन्हे एक अवश्य दिया जाए। इस बात पर साइमन कमीशन में मतभेद हो जाने पर उन्होने साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर हस्ताक्षर नही किए।

स्वतन्त्र भारत में सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

डॉ. अम्बेडकर को भारतीय संविधान की प्रारूप समिति का अध्यक्ष और स्वतन्त्र भारत का पहला विधिमंत्री बनने का गौरव हुआ। विधिमंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर की सबसे बड़ी देन 'हिन्दू कोड़ बिल' का प्रारूप तैयार करना था जिसका उद्देश्य मुख्यतः स्त्रियों एवं दलितों को विशेष अधिकार दिलाना था। उन्होने यह कोड बिल इस भावना से तैयार किया था कि हिन्दुओ के कानून हिन्दुओ पर समान रूप से लागू हो इसके अन्तर्गत चार विषय सम्मिलित थे। प्रथम जन्म के आधार पर अधिकारो को समाप्त किया जाए। द्वितीय महिलाओ को सम्पत्ति मे पूरा अधिकार मिले। तृतीय लड़कियों को पिता की सम्पत्ति मे हक मिले। चतुर्थ महिलाओं और पुरूषो दोनो को तलाक के समान अधिकार प्राप्त हो। इस प्रकार उन्होने समाज के दलित वर्गो के साथ–साथ अन्य पिछड़े वर्गो, महिलाओं, जनजातियों, कमजोर वर्गो इत्यादि में सामाजिक व राजनीतिक चेतना का संचार करने का अथक प्रयत्न किया। सदियों से एक परम्परा के रूप में चली आ रही हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की कुरीतियो को चुनौती दी और उन्हे सचेत किया कि वे समय के अनुसार अपनी रूढ़िगत प्रयासो में लचीलापन लाये तथा अपनी संकीर्ण विचारधारा मे परिवर्तन करे। डॉ. अम्बेडकर ने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षो से ही हिन्दू धर्म एवं हिन्दू समाज में परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष किया। जिससे दलितो को हिन्दू समाज में सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हो सके। किन्तु उन्हे अपने प्रयास में सफलता प्राप्त नही हुई। अतः उन्होने अनुभव किया कि जब तक हिन्दू धर्म है, जाति रहेगी और जब तक जाति है, दलितो की दासता भी रहेगी। इसलिए दलितो की मुक्ति तब तक सम्भव नही है जब तक वे हिन्दू धर्म का परित्याग नही करते। उनके अनुसार हिन्दू धर्म में स्वतन्त्रता, समानता तथा भातृत्व नही है और इसमें सामाजिक न्याय का अभाव है यह अपने हजारो लोगो को पशुवत जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करता है। यह उच्च वर्गो के हाथों बहुसंख्यक निम्न वर्ग के शोषण और दासता को प्रतीक है। हिन्दू धर्म की दासता से मुक्ति के लिए दलितो द्वारा हिन्दू धर्म का परित्याग जरूरी है। 13 अक्टूबर, 1955 को येवला में दलितो की सभा को सम्बोधित करते हुए जब डॉ. अम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन करने की घोषणा की थी तो उन्होने कहा था कि ''दुर्भाग्य से मैं हिन्दू पैदा हुआ यह मेरे बश की बात नही थी किन्तु हिन्दू धर्म की अपमानजनक एवं शर्मनाक स्थिति में रहने से इन्कार करना मेरी शक्ति सीमा में है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै हिन्दू रूप में नही मरूगा।'' इसलिए उन्होने 1956 में बुद्ध जयन्ती के अवसर पर बौद्ध धर्म में शिक्षा लेने की घोषणा कर दी और अन्ततः वृहस्पति दशहरे के दिन 14 अक्टूबर 1956 को लगभग 2 लाख दलितों के साथ नागपुर मे बौद्ध धर्म को स्वीकार किया।

इसी क्रम में आरक्षण की नीति के माध्यम से दलितो का सशक्तिकरण होने की आशा व्यक्त की जाती है किन्तु क्षतिपूरक भेदभाव जिसे बहुधा 'संरक्षात्मक भेदभाव' कहा जाता है केवल जनसंख्या के ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गो (अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियो) के अधिमान्य उपचार की एक सरकारी नीति एंव कार्यक्रम है जो संविधान में सम्मिलित है तथा परवर्ती कानून एवं न्यायिक निर्णयों के माध्यम से लागू किया जाता है। संविधान में निहित स्वतन्त्रता, समानता, न्याय एवं भातृत्व के लक्ष्यो को प्राप्त करने का यह एक चयनित साधन था। ऐतिहासिक रूप से वंचितो के लिए इन संवैधानिक प्रावधानो की निष्पादन में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारो ने इन वंचित समूहो को आर्थिक,

शैक्षिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए अनेक युक्तियॉ अपनाई है। इन युक्तियों को भारत में दलितों को सशक्त करने के लिए संरक्षात्मक, विकासात्मक एवं कल्याणकारी योजनाओ के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

इस वृहत क्षतिपूरक भेदभाव नीति के अन्तर्गत सरकारी सेवा एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में नौकरी के लिए आरक्षण अथवा कोटा स्थापित करने का उद्देश्य भारतीय समाज के वंचित वर्गो को सहायता प्रदान करके एक न्यायसंगत समाज का निर्माण रहा है। विशेष रूप से नौकरी में आरक्षणो का अभिप्राय केवल कुछ व्यक्तियों को नौकरी प्रदान करना नही, वरन् उत्थान एवं शक्ति देना तथा उन्हे सामाजिक एवं आर्थिक दोनो प्रकार की गतिशीलता के लिए अवसर उपलब्ध कराना भी है। नौकरी में आरक्षण ने निश्चित रूप से एक ऐसे साधन के रूप में कार्य किया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहो के सदस्यों, विशेष रूप से दलितो एवं जनजातियों ने वैयक्तिक गतिशीलता के माध्यम से एक प्रकार की सामाजिक गतिशीलता प्राप्त की है। आरक्षण का दलित उत्थान में ऐतिहासिक महत्व है दलित जनमानस में आरक्षण सामाजिक, आर्थिक एवं बौद्धिक सशक्तिकरण, गतिशीलता एवं प्रतिष्ठा के प्रमुख वाहक का सशक्त प्रतीक बन चुका है। आरक्षण ने स्वतन्त्र भारत में सदियो से शोषित पीड़ित एवं अधिकार विहिन रहे, दलित समाज को अधिकार सम्पन्न करने एवं उनके लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के साधन के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वाधीनता से पूर्व हंटर कमीशन 1882 त्रावनकोर रियासत कोल्हापुर के छत्रपति शाहूजी महाराज, रेतमलाई, श्रीनिवास पेरियार, ज्योतिबाफुले एवं मद्रास प्रेसिडेंटी 1921 ई0 ने वंचितो को विशेष सुविधा एवं आरक्षण हेतु प्रयास किए। इसके बाद सार्वजनिक पदों में अनुसूचित जातियो के लिए 1943 ई0 में 8 प्रतिशत कोटा रखा गया। आजादी के बाद संवैधानिक रूप से प्रारम्भ में 10 वर्षो के लिए अनुसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति के लिए क्रमशः 15 प्रतिशत एवं 7.5 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। बी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा मण्डल कमीशन लागू करके आरक्षण नीति का अंतहीन सिलसिला प्रारम्भ कर दिया जो निरन्तर बढता ही जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेश्राम 'विभलकीर्ति', एल0 जी0, महात्मा जोतिबा फुले रचनावली–1, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका से।
2. माइकल, एस0 एम0, आधुनिक भारत मे दलित : दृष्टि एवं मूल्य, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010।
3. अम्बेडकर, डा0 बी0 आर0, धर्मपरिवर्तन सम्बधी डा0 अम्बेडकर के व्याख्यानो का हिन्दी संकलन, अम्बेडकर सहित्य रक्षक परिषद, झिंझक, 1981।
4. डा0 पूरणमल, दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय, अविषकार पब्लिशर्स, जयपुर, 2002।